The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 1 | January 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF: 5.6
Website: www.theacademic.in

'सोनभद्र की राधा' उपन्यास में चित्रित ग्रामीण यथार्थ

पंकज कुमार

शोधार्थी (हिंदी), आई.आई.एम.टी. विश्वविद्यालय, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.18648196

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Accepted: 26-01-2026

Published: 10-02-2026

Keywords:

अंधविश्वास, रीति-रिवाज, रूढ़िवादिता, ग्रामीण समाज शिक्षा, परिदृश्य, धार्मिक आयोजन, जातीय संरचना, यथार्थ स्वरूप इत्यादि।

ABSTRACT

ग्रामीण यथार्थ का संबंध गाँवों के वास्तविक जीवन और उनसे जुड़े क्रियाकलापों से है। गाँवों के वास्तविक स्वरूप का यथार्थपरक चित्रण करने वाले तत्वों में अंधविश्वास, रूढ़िवादिता शिक्षा की निम्नस्थिति, साधु-संतों के धार्मिक आडंबर और परंपरागत रीति-रिवाज शामिल हैं। मधुकर सिंह रचित 'सोनभद्र की राधा' उपन्यास में 'बनगाँव' नामक एक ऐसे ही गाँव की यथार्थ का चित्रण प्रस्तुत किया गया है, जो अभी भी अंधविश्वास, रूढ़िवादिता और परंपराओं के भँवर जाल में फंसा हुआ है। सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा अहम भूमिका निभाती है। परन्तु इस उपन्यास में चित्रित गाँव में व्याप्त सड़ी-गली मान्यताओं ने शिक्षा के प्रति, खासकर महिलाओं की शिक्षा के प्रति ग्रामीण समाज को उदासीन बना दिया है। उपन्यास के प्रमुख पात्र अनुराधा और गोविन्द रैदास के माध्यम से कथाकार ने ग्रामीण समाज में व्यापत कुरीतियों और रूढ़िवादी मान्यताओं पर प्रहार करते हुए कई परिदृश्य स्थापित किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में धार्मिक उत्सव और आयोजनों का खास महत्व है। उपन्यास में प्रस्तुत 'बनगाँव' में भी धार्मिक आयोजनों खासकर रामलीला मंचन के द्वारा साधु-महात्माओं के उपदेशों के साथ-साथ धार्मिक बाह्य आडंबर और जातीय संरचना के यथार्थ स्वरूप का जिक्र है। इसी जातीय संरचना का वास्तविक व विकृत रूप 'बनगाँव' के अनुराधा के पिता नगेसर मिसिर और गोबिन रैदास के पिता हरिभजन के बीच घटी घटनाओं के माध्यम से उजागर होता है।

मूल आलेख:-

परंपरा और रीति-रिवाज ग्रामीण जीवन के यथार्थ स्वरूप को मजबूत आधार प्रदान करते हैं। ये दोनों तत्व ग्रामीण सांस्कृतिक और धार्मिक धरोहर के रूप में क्रियाशील है। मधुकर सिंह जी की पुस्तक 'सोनभद्र की राधा' में उच्च जाति की अनुराधा और निम्न जाति के गोबिन रैदास के प्रेम-प्रसंग को उपयुक्त ग्रामीण रीति-रिवाज व परंपराओं के माध्यम से सशक्त आधार प्रदान किया गया है। उपन्यास के 'बनगाँव' में इन दोनों के प्रेम-प्रसंग की चर्चा तो है ही, साथ ही इस गाँव में युवक-युवतियों के प्रेम-प्रसंग से संबंधित ऐसे कई काल्पनिक मान्यताएँ हैं जो उपन्यास की कथावस्तु को ग्रामीण यथार्थ के करीब लाते हैं। 'बनगाँव' की एक लोककथा के अनुसार ''लगभग चालीस-पचास साल पहले-जैसा कि बड़ी बूढ़ियाँ बताती हैं, गौरा और जगेसर दो अलग जातियों के थे। कुछ ही दिनों तक गौरा और जगेसर के संबंध बनगाँव के लोगों से छिपे रहे। बाद में तो घर-घर चर्चाएँ चल पड़ीं। शुरू में गौरा को ही ज्यादा बदनामी झेलनी पड़ी, क्योंकि जगेसर गौरा से ऊँची जात का धनी-मानी था। जगेसर को लोग खुलकर कुछ कहने से डरते थे। एक दिन दोनों बनगाँव छोड़कर कहीं चले गए। लोग भाले और गँडासे के साथ जवार के कई गाँवों में पता लगा आए परन्तु कहीं पता नहीं चला। आज तक किसी ने यह नहीं बताया कि गौरा जगेसर की जोड़ी अभी जिन्दा है या मर गई है।''1

ग्रामीण जीवन में व्यापत अंधविश्वास एक ऐसा ग्रामीण यथार्थ है, जो अभी भी गाँवों के विकास में बाधक है। शिक्षा, जागरूकता और वैज्ञानिक सोच के अभाव की वजह से ग्रामीण घटनाएँ अंधविश्वास की श्रेणी में आ जाती हैं। 'सोनभद्र की राधा' उपन्यास में इसी अंधविश्वास के कारण लोग बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदा से डरे और सहमे रहते हैं तथा इसे दैवीय प्रकोप स्वीकार कर बैठते हैं। हर साल बाढ़ के आने की घटना को 'बनगाँव' के लोग एक दैवीय प्रकोप के रूप में देखते हैं। इस गाँव में लगभग हर साल सोन और टिसुना नदी के प्रकोप से बाढ़ आ ही जाता है। जब गाँव के मिसिर जी कहते हैं कि अगले साल से अब बाढ़ नहीं आएगी तो सभी चकित हो जाते हैं। ''मिसिर जी ऊपर से ही चिल्लाते हैं, अगली साल से सोन बढ़ने के पहले टिसुना के चारों ओर बनगाँव के लोग हाथ जोड़कर खड़े हो जायेंगे। पहले बाढ़ इसीलिए कम आती थी कि लोग टिसुना की पूजा करते थे। हम लोग बाप-दादों को भूलते जा रहे हैं। तब यही सब न होगा।''2

साधु-महात्माओं के आडंबर और छल-प्रपंच की घटनाएँ आज भी ग्रामीण समाज के लिए अभिशाप है। गाँव के लोग बहुत जल्द ही इनके झूठे वादे और कपोल-कल्पित कथाओं को सत्य स्वीकार लेते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में साधु-संतों के बाह्य आडंबर का जाल अत्यंत विस्तृत है। 'सोनभद्र की राधा' उपन्यास में रामलीला ओर धार्मिक आयोजनों के माध्यम से साधु-महात्माओं के वास्तविक चरित्र का चित्रांकन किया गया है। कुछ साधु-महात्माओं ने भगवान के नाम का इस्तेमाल कर इसे रोजी-रोटी का धंधा बना डाला है। पूजा-पाठ एवं सत्संग के दौरान ईश्वर और धर्म की

व्याख्या अपने फायदे के अनुकूल करना और लोगों को धर्म के नाम पर डराना इन पाखंडी महात्माओं का काम है। ईश्वर का डर दिखाकर दक्षिण के रूप में धन प्राप्त करने की गलत प्रवृत्ति ग्रामीण समाज में ज्यादा दिखाई देती है। गाँव के अधिकांश लोग कम पढ़े-लिखे और ज्ञान-विज्ञान से कोसों दूर रहते हैं। 'सोनभद्र की राधा' उपन्यास में 'बनगाँव' के ग्रामीणों की कमोवेश यही स्थिति है। ग्रामीण यथार्थता के एक दृश्य में रामलीला मंचन के बाद जब आरती में कम पैसे आते हैं तो महंत कहता है "इस प्रकार से बाल-बच्चों का भरण-पोषण कैसे चलेगा? कुत्ते भी दरवाजे-दरवाजे दुम हिलाकर अपना पेट पाल लेते हैं। वह रोज घोषणा करता है, रामलीला-प्रेमी सज्जनों। भगवान को आरती में बहुत कम पैसे मिल रहे हैं। इस तरह से कैसे काम चलेगा? हम पचीस मूर्तियाँ हैं। सबके बाल-बच्चों ओर परिवार हैं। माताओं और बहनों को चाहिए कि घर से अनाज, रूपये-पैसे रोज लेकर आएँ। इससे भगवान भी प्रसन्न रहेंगे और आप लोगों को भी इसका फल मिलेगा।"3 'बनगाँव' में साधु-महात्मा यत्र-तत्र बहुतायत देखे जा सकते हैं। पंडित, ब्राह्मण और साधुओं का स्थान सर्वोपरि है। उनके आदेश की अवहेलना करने का अर्थ है समाज और गाँव से उन्मुख होना। सिर्फ अपने धर्म के प्रति कट्टरता भी आडंबरता की निशानी है। इससे पूरा ग्रामीण माहौल दूषित हो जाता है। यह एक वास्तविकता है कि रामलीला में राम का किरदार अभी भी उच्च जाति का व्यक्ति ही निभाता है। इसे आडंबर ही कहा जा सकता है। जब भगवान के लिए संपूर्ण मानव जाति एक समान है तो भी महात्मा और साधुओं द्वारा राम के किरदार के लिए उच्च जाति ओर निम्न जाति में भेद क्यों? ये भेद धार्मिक आडंबर को प्रदर्शित करते हैं। 'सोनभद्र की राधा' उपन्यास में महंत जी जानबूझकर यह बात छिपाते हैं कि राम का किरदार निभाने वाला गोबिन चमार जाति से संबंध रखता है। रामलीला के बाद राम बनने वाले व्यक्ति के पैर पूरे ग्रामीण समाज के द्वारा स्पर्श करना एक आडंबर ही है। साधु-संतों द्वारा राम बनने वाले युवक का इतना ज्यादा महिमा मंडन कर दिया जाता है कि लोग उसे भगवान का प्रतिरूप ही मानने लगते हैं 'बनगाँव' में भी रामलीला मंचन के दौरान यही स्थिति दिखाई पड़ती है। धर्म के नाम पर या किसी धार्मिक उत्सव के नाम पर 'बनगाँव' वालों से चंदा बसूलना एक परंपरागत रीति-रिवाज है। उपन्यास में दिखाया गया है कि इस वर्ष 'बनगाँव' में ही रामलीला के आयोजन का प्रस्ताव है। इस कारण रामलीला में शामिल हो रहे साधु-संतों के भोजन व्यवस्था का इंतजाम भी 'बनगाँव' वालों पर ही है। 'सोनभद्र की राधा' उपन्यास में इस दृश्य को निम्न प्रकार से चिन्हित किया गया है- "रामलीला शुरू होने के पहले मिसिर जी चौकी पर खड़े होकर कह रहे हैं, भाई रे। गाँव में रामलीला मंडली वर्षों बाद आई है। बाढ़ इधर कई बरस से लगातार आ रही है। इसी बहाने कुछ राम चर्चा चले तो दुख दलिदर दूर हो। मंडली में पच्चीस मूर्तियाँ हैं। इनके लिए शाम का भोजन जुटाना हमारा परम धर्म है। बनगाँव के अमीर-गरीब सब पर इनका बराबर बोझ आ गया है। भगवान के जन्म से लेकर राजगद्दी तक कथा सवा महीने तक चलेगी।"4

लड़कियों की शिक्षा का निम्न स्तर अभी भी ग्रामीण समाज के लिए एक बहुत बड़ी समस्या है। गाँव के लोग आज भी लड़कियों को पढ़ने के लिए शहर भेजने से कतराते हैं। कुछ सामंती सोच के पुरुष का मानना हे कि

लड़कियाँ पढ़-लिखकर आचरणहीन हो जाती हैं। सामाजिक और परंपरागत रूढ़ियों के कारण लड़कियों को घर से बाहर निकलने की इजाजत अभी भी कुछ ग्रामीण इलाकों में नहीं है। इस कारण ग्रामीण परिवेश में अक्सर लड़कियों को शिक्षा से वंचित रहना पड़ता है। इसी तथ्य का उल्लेख मधुकर सिंह ने 'सोनभद्र की राधा' उपन्यास में किया है। इस उपन्यास में कमतिया तिवारी की बेटी गौरा कहती है "मुझे तो बाबू जी ने किताब कलम तक छूने नहीं दी। कहते थे, बेटी जात बढ़ाने से बदचलन हो जाती है। मेरी बेटी को पढ़-लिखकर वकालत थोड़े करनी है? पैसा है तो बढ़िया-से-बढ़िया घराना मिल जाएगा।"5 ऐसा नहीं है कि ग्रामीण समाज में पढ़ाई के प्रति सिर्फ लड़कियाँ उदासीन है, बल्कि लड़कों में भी शिक्षा का स्तर ज्यादा उन्नत नहीं है। इसी वजह से गाँवों में विधवा विवाह को आज तक पूर्णरूप से मान्यता नहीं मिली है। गाँव में इसे अपराध बोध के रूप में सामाजिक तौर पर देखा जाता है। ग्रामीणों में मान्यता है कि धर्म विधवा विवाह को एक अपराध और अनैतिकता की श्रेणी में देखता है तथा इसकी इजाजत भी नहीं देता है। जबकि वास्तविकता इससे परे है। विधवा के लिए गाँव और शहर कहीं भी आने-जाने पर पूर्णतः रोक है। मेले, पर्व-त्योहार और धार्मिक आयोजनों में विधवा को भाग लेने पर पाबंदी है। उपन्यास का नायक गोबिन रैदास निम्न जाति का होते हुए भी शारीरिक रूप से बेहद सुंदर और समझदार भी है। वह रामलीला और कई धार्मिक मेले में अलग-अलग तरह की भूमिका निभाता है। इसे समाज गलत नजर से देखता है। इसी कारण 'सोनभद्र की राधा' उपन्यास में कमतिया तिवारी रामलीला देखने के लिए अपनी बहू को आज्ञा नहीं देती है। ग्रामीण यथार्थ के इस बिंदु को सत्यापित करती हुई कमतिया तिवारी कहती है "विधवा है तो क्या हुआ, जवान तो है। बहू किसी भी समय इस पर रीझकर अपने धर्म-कर्म भूल सकती है। तब खानदान में कितना बड़ा कलंक लगेगा। अगल-बगल मुँह दिखलाना भी मुश्किल हो जाएगा। अपनी जाति की विधवा विवाह वैसे निषेध है। सबसे पहले काम तो यही करना चाहिए कि बहू को रामलीला देखने से मना कर देना चाहिए। किसी विधवा का तमाशे-उत्सव में क्या काम? कहीं नजर किसी पर फिसल जाए तो।"6

'सोनभद्र की राधा' उपन्यास के एक अंश में विधवा की जिंदगी से ऊब चुकी भौजी सामाजिक मान्यताओं का खंडन करती है। वह कहती है "मैं इस नरक की जिंदगी से ऊब चुकी हूँ। मुझे लेकर कहीं भाग चलिए। मेरे पास काफी रुपये हैं और मेरे सारे गहने भी। हम कहीं भी जिंदगी अच्छी तरह बरस कर सकते हैं।"7

ग्रामीण समाज में विधवाओं को अछूत के रूप में समझा जाता है। 'बनगाँव' में भी विधवाओं के साथ उचित व्यवहार नहीं किया जाता है। उच्चकुल में तो बहू-बेटियों और विधवाओं पर तो और भी कड़ी नजर रखी जाती है। विधवाओं को तो समाज का अंग माना ही नहीं जाता है। इसी यथार्थ को चित्रित करते हुए मधुकर सिंह जी लिखते हैं "हमारे खानदान की नाक कट जाएगी। बड़े घर की बेटियाँ कोई काम नहीं करती। हमारे यहाँ तो विधवा के लिए वैसे ही सारे दरवाजे बंद रहते हैं।"8

दलित विमर्श भी ग्रामीण यथार्थ का हिस्सा है। गाँव के उच्च जाति के लोगों को यह मंजूर नहीं कि कोई दलित पढ़-लिख कर बड़ा बने और गाँव का नाम कमाए। गोबिन रैदास पढ़ने में बड़ा होशियार है। इस बात को लेकर गोबिन का पिता हरिभजन बहुत खुश रहता है। हर जगह अपने बेटे की बहादुरी की बात करता है। चूँकि हरिभजन चमार जाति से ताल्लुक रखता है, इस कारण गाँव में लोग उसे भला-बुरा कहते रहते हैं। गाँव में इस बात कि चर्चा हर तरफ हरिभजन करता चल रहा है कि गरीबों और भूमिहीनों को मिसिर जी जमीन बांटेंगे। गाँव के रामधनी सिंह कहते हैं कि हरिभजन चमार का मन कुछ ज्यादा ही बढ़ गया है। इस संबंध में इस उपन्यास का यह अंश बेहद प्रासंगिक है- ''रामधनी सिंह कहते हैं कि हरिभजन चमार का लड़का पढ़ क्या गया, उसका दिमाग बदल गया है। मिसिर बाबा को जमीन का मरम क्या मालूम? ब्राह्मण-पुरोहित का काम तो सिर्फ पूजा-पाठ कराना होता है। बनगाँव के चमारों को ऐसी अनहोनी बातें सुनाकर सिर चढ़ाना ठीक नहीं। कहीं बहक गए तो सँभाल पाना मुश्किल हो जाएगा। रामधनी सिंह उसे डाँटते हैं, खबरदार हरिभजन ऐसी वैसी बातें यहाँ फैलाई तो बनगाँव में रहना मुश्किल हो जाए। बाप-दादे जूती बनकर जिए हैं, तुम्हें भी बाबुओं की जूती बनकर रहना है।''9

निष्कर्ष:-

'सोनभद्र की राधा' उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ के विभिन्न पहलुओं का चित्रांकन सामाजिक और आर्थिक परिवेश के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। ग्रामीण यथार्थ के विभिन्न नकारात्मक तत्वों के कारण आज भी ग्रामीण समाज अपेक्षित उन्नति नहीं कर पाया है। ये नकारात्मक तत्व गाँवों की वास्तविक प्रकृति को खोखला कर रहे हैं। उपन्यास में चित्रित 'बनगाँव' के लोगों में व्याप्त सामंती मानसिकता और रूढ़िवादिता के कारण सामाजिक परिवर्तन को गति नहीं मिल पा रही है। कथाकार मधुकर सिंह कृत 'सोनभद्र की राधा' उपन्यास वास्तव में संपूर्ण भारतीय ग्रामीण समाज की वास्तविकता को प्रस्तुत करता है। सच्चे अर्थ में ग्रामीण यथार्थ के विभिन्न पहलुओं को समर्पित यह उपन्यास ने ग्रामीण समाज के लिए पथ प्रदर्शक के रूप में महत्पूर्ण भूमिका निभाने का कार्य किया है।

संदर्भ सूची:-

- सिंह, मधुकर, समय कथाचक्र (सोनभद्र की राधा), आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 2013, पृ. 109
- सिंह, मधुकर, समय कथाचक्र (सोनभद्र की राधा), आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 2013, पृ. 101
- सिंह, मधुकर, समय कथाचक्र (सोनभद्र की राधा), आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 2013, पृ. 111
- सिंह, मधुकर, समय कथाचक्र (सोनभद्र की राधा), आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 2013, पृ. 110
- सिंह, मधुकर, समय कथाचक्र (सोनभद्र की राधा), आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 2013, पृ. 155

- सिंह, मधुकर, समय कथाचक्र (सोनभद्र की राधा), आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 2013, पृ. 141
- सिंह, मधुकर, समय कथाचक्र (सोनभद्र की राधा), आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 2013, पृ. 142
- सिंह, मधुकर, समय कथाचक्र (सोनभद्र की राधा), आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 2013, पृ. 134
- सिंह, मधुकर, समय कथाचक्र (सोनभद्र की राधा), आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 2013, पृ. 98